DIPLOMA IN YOGA AND AYURVED PANCHKRAMA

DYA-पूरक अध्ययन सामग्री

PANCHKRAMA

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. नित्यानंद शर्मा Md., P.hd. (yoga & Ayurved)

सहायक आचार्य योग एवं स्वस्थ शिक्षा विभाग,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पूरक अध्ययन इकाई – पंचकर्म

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्धेश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 शिरोबस्ति परिचय – विधि – गुण – कार्मुकता एवं सावधानियाँ

1.4 शिरोधारा परिचय – विधि – लाभ – प्रकार एवं सावधानियाँ

1.5 अक्षितर्पण परिचय विधि लाभ एवं सावधानियाँ

1.6 अभ्यंग परिचय विधि लाभ एवं सावधानियाँ

1.7 स्वेदन विधि परिचय लाभ एवं सावधानियाँ

1.8 सवंगिधारा (पिड्चिल), पी.पी.एस., गन्डूष एवं कवल, परिषेक, अवगाहन, शिरोपिचु, कर्णपूरण, षष्टिक शालि पिण्ड स्वेद आदि का वर्णन

1.9 बोधात्मक प्रश्न

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 **उद्धेश्य** – पंचकर्म की इस पूरक अध्ययन इकाई के अन्तर्गत हम

- शिरोबस्ति, शिरोधारा, अक्षितर्पण, अभ्यंग तथा स्वेदन विधि का परिचय – लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन करेंगे।
- तत्पश्चात हम सर्वागंधारा (पिड्चिल), पी.पी.एस., गण्डूप एवं कवल का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।
- अन्त में केरलीय पंचकर्मान्तक षष्टिक शालि पिण्डस्वेद स्वेद का वर्णन करेंगे।
- पंचकर्म जैसी जटिल पद्धति को सरलीकरण करते हुये यह विधा जनसामन्य तक विद्यार्थियों के माध्यम से स्वास्थ्य के क्षैत्र में जागरूकता उत्पन्न करने की दृष्टि से इस इकाई का वर्णन किया जा रहा है।

1.2 **प्रस्तावना** – ''पहला सुख निरोगी काया'' की प्राप्ति हेतु केरलीय पंचकर्म विद्या जो कि आयुर्वेदीय मनीषि महर्षि चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट आदि ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट है, उसका स्वास्थ्य की दृष्टि से आज के प्रदूषित आहार–विहार जन्य वातावरण में महती आवश्यकता को देखते हुये ''शास्त्र सम्मत'' युगानुरूप सन्दर्भ में उल्लेखित किया जाना सामयिक है। आज दौड़म भाग की जीवन शैली में तनाव, अवसाद, चिंता, मोटापा, मधुमेह, थायोराइड, उच्च रक्तचाप एवं जोड़ो के दर्दो ने प्रत्येक परिवार एवं समाज को जकड़ रखा है। स्वास्थ्य चिन्तकों के लिये यह चिन्ता का विषय भी है कि जीवन शैली जन्य रोगों से रोगियों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। भारत ''डायबिटीज की केपिटल'' बनने जा रहा है। विश्व के सर्वाधिक युवा भारत में रहते हैं एवं युवाओं एवं बच्चों में मधुमेह का रोग तेजी से फैलना दुःखद विषय है।

अतः आयुर्वेद शास्त्र की विशिष्ट पद्धति पंचकर्म का ज्ञान रोगियों के रोग दूर करने एवं स्वस्थ व्यक्ति को स्वस्थ बनाये रखने के लिये उपयोगी है। पंचकर्म शोधन की वह प्रक्रिया है ''जिसके माध्यम से विकृत त्रिदोषों को एवं शरीरस्थ मलों को सुखपूर्वक शरीर से बाहर निकालकर शरीर को रोगमुक्त कर चिरकालीन उत्तम आरोग्य प्रदान कराया जाता है।''

1.3 शिरोबस्ति परिचय – विधि – गुण – कार्मुकता एवं सावधानियाँ

1. प्रस्तावना (शिरोबस्ति)
2. शिरोबस्ति परिचय
3. शिरोबस्ति की विधि
4. शिरोबस्ति की अवधि
5. सम्यक् शिरोबस्ति के लक्षण
6. शिरोबस्ति के गुण
7. शिरोबस्ति की कार्मुकता
8. शिरोबस्ति में प्रयुक्त स्नेह का अवशोषण
9. शिरोबस्ति से सम्बन्धित अन्य उल्लेखनीय तथ्य

आयुर्वेद जीवन का सर्वोत्कृष्ट विज्ञान है। इसमें स्वस्थवृत्त के नियमों के साथ–साथ व्याधि निवारणार्थ शोधन एवं शमन चिकित्सा विधियों का प्रतिपादन किया गया है। चिकित्सा में षडुपक्रम एवं पंचकर्म का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यह षडुपक्रम में वर्णित स्नेहन – स्वेदन को पचंकर्म के पूर्वकर्म के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा व्याधि के प्रशमनार्थ इनका स्वतन्त्र उपयोग भी किया जाता है। स्नेहन की प्रक्रिया को बाह्य एवं आभ्यन्तर इन दोनों रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। शिरोधारा एवं शिरोबस्ति ऐसे ही उपक्रम है, जिनमें बाह्य स्नेहन का स्वरूप है तथा यह स्थानिक स्नेहन माना जाता है। यद्यपि इसका स्पष्टतः पंचकर्म अथवा षडुपक्रम में कहीं उल्लेख नहीं है, पर स्थानिक स्नेहन के प्रभाव वाली होने के कारण षडुपक्रम के एक अंग ''स्नेहन'' के अन्तर्गत ही इसकी गणना की जाती है।

2. शिरोबस्ति परिचय –

शिर पर बस्ति सदृश चर्म पुटक बांधकर जो ''तैल पूरण कर्म'' किया जाता है, उसे शिरोबस्ति नाम से जाना जाता है। आचार्य वाग्भट ने सिर पर तैल धारण कर्म को ''मूर्ध तैल'' नामक संज्ञा दी है।

मूर्ध तैल चार प्रकार के होते है।

1. शिरोऽभ्यंग
2. शिरः सेक (परिषेक)
3. शिरः पिचु धारण
4. शिरो बस्ति।

आचार्य चरक ने भी मूर्ध तैल के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि जिन व्यक्तियों का शिर स्नेह से सदा आर्द्र रहता है, उन्हें शिरः शूल आदि रोग नहीं होते एवं इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती है, मुख की त्वचा कान्ति युक्त, स्निग्ध एवं सुखपूर्वक निद्रा आती है।

1. शिरोऽभ्यंग – शिर पर तैल की मालिश (मर्दन) करना शिरोऽभ्यंग कहलाता है। अभ्यंग के लिए सुखोष्ण तैल का उपयोग किया जाता है। शिर एवं इन्द्रियों का तर्पण होता है तथा मुख की त्वचा कोमल एवं स्निगध हो जाती है।
2. शिरः सेक (परिषेक) – यह शिरोऽभ्यंग की अपेक्षा अधिक कार्मुक होता है। शिर पर विशेषतः कपाल प्रदेश का औषध सिद्ध क्वाथ, दुग्ध, तक्र, इक्षुरस, घृत, तैल आदि द्वारा विशिष्ट प्रकार से धारा छोड़ना ''शिर सेकः'' कहलाता है। इसी को ''शिरोधारा'' नाम से भी जाना जाता है।
3. पिचु – शिरोऽभ्यंग तथा परिषेक की अपेक्षा पिचु को अधिक श्रेष्ठ तथा गुणकारी माना गया है। कापासखण्ड ब्रह्म (कॉटन स्वाब) को स्नेहाक्त कर शिर पर धारण करना पिचु धारण कहलाता है। ब्रह्मरन्ध्र पर इसका धारण करने का विधान है। स्निग्ध पिचु के प्रयोग से केशपात, शिर की त्वचा का विदार, वलित–पलित, दाह, व्रण तथा नेत्रस्तम्भनादि का शमन होता है।
4. शिरो बस्ति – चतुर्विध ''मूर्ध तैल'' मे शिरोबस्ति को सर्वाधिक कार्मुक माना गया है। बस्ति कर्म में जिस प्रकार प्राणियों की बस्ति (Bladder) का प्रयोग किया जाता है, अथवा बस्ति के अभाव में चर्म द्वारा निर्मित यन्त्र का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार शिरोबस्ति में भी तैल धारण करने के लिए प्राणियों (महिष) के चर्म से विशेष प्रकार से निर्मित शिरोबस्ति यंत्र का उपयोग किया जाता है, यह एक चमड़े का टोपी सदृश यंत्र

होता है, जिसको शिर पर यथाविधि स्थापित करते हुए निश्चित काल मार्यादानुसार आतुर के शिर पर स्नेह धारणार्थ प्रयोग में लाते हैं।

3. शिरोबस्ति की विधि–

शिरोबस्ति कर्म की अपराह्न एवं सांय काल समायोजना करते हैं, सर्वप्रथम रोगी का मुडंन कर आतुर को जानुसम से (डेढ़ से दो फुट आसन) (कुर्सी) पर बैठाते हैं, तत्पश्चात् शिर पर टोपाकार शिरोबस्ति यन्त्र को स्थापित कर बंधन से बांधकर व्यवस्थित करते हैं, साथ यंत्र के आभ्यान्तर भाग में रोमान्त के स्थान पर माषकल्क को भरकर विशेषरूप से निर्मित माषकल्क की पिठ्ठी को भरकर उस स्थान को अवकाश रहित करते हैं ताकि स्नेह का स्रवण न हो सके। बंधन भी ऐसा बांधते हैं कि वहाँ कर्ण के समीप से घूमते हुए सात–आठ स्तर के पश्चात् कनपटी के पास लाकर ग्रंथित या चिपका देते हैं।

शिरोबस्ति यंत्र शिर पर अच्छी तरह स्थित हो जाए इसलिए आतुर का मुण्डन करवा लेते हैं, विशेष परिस्थितियों में एकदम छोटे बाल भी कटवाकर (जीरो मशीन से) शिरोबस्ति कर्म की योजना की जा सकती है। शिरोबस्ति कर्म के समय यंत्र स्थापित करने के पश्चात् आतुर को निर्देश देते हैं कि वह शिर को अचल रखे तत्पश्चात सिद्धदशमूल तैल लेकर उसे सुखोष्ण कर धीरे धीरे शिरोबस्ति यंत्र के सहारे अंदर पूरण करते हैं। स्नेह का पूरण इतना करते हैं कि वह केशभूमि से दो ऊंगल उपर तक आ जाए। सामान्यतया सिद्धदशमूल तैल स्नेह की यह मात्रा एक रोगी में 400 से 700 ml के मध्य स्नेहपूरणार्थ प्रयोग में आती है।

स्नेह शीतल होने की स्थिति में बीच–बीच में थोड़ा तैल निकालकर उसके स्थान पर उतना ही उष्ण दशमूल तैल का पूरण करते रहते हैं। जब शिरोबस्ति कर्म पूर्ण हो जाता है तब शिरोबस्ति यंत्र में से स्नेह निकालकर पश्चात् शिरोबस्ति यंत्र हटाकर स्कन्ध ग्रीवा ललाट, शंख, कपाल एवं पृष्ठ पर मर्दन करते हैं या स्वयं रोगी से उपर्युक्त स्थलों पर मर्दन करवाते हैं।

4. शिरोबस्ति की अवधि–

वातिक शिरारोगों में दस हजार मात्रा पर्यन्त (53 मिनिट), पैत्तिक शिरारोगों में आठ हजार मात्रा पर्यन्त (43 मिनिट), श्लैष्मिक शिरो रोगों में छः हजार मात्रा पर्यन्त (31 मिनिट), स्वस्थ व्यक्तियों में एक हजार मात्रा पर्यन्त सिद्ध स्नेह का धारण करवाना शास्त्र सम्मत है।

मात्रा का लक्षण – पलक खोलने अथवा बन्द करने के साथ जितनी देर में मनुष्य हस्ताग्र दक्षिण जानुमंण्डल पर घुमाने में लगता है, वह एक मात्रा कहलाती है।

शिरोबस्ति में काल का निर्धारण – सामान्यतः जिस दिन सूर्य का प्रकाश निर्मल हो, अकाल न हो, ऋतु का मिथ्या योग, अयोग या अतियोग न हो, आकाश मेघाच्छन्न न हो, तब सायंकाल शिरोबस्ति की योजना करनी चाहिये। कफाधिक्य में प्रातः काल या दिन में भी शिरोबस्ति कर्म किया जा सकता है। वात एवं वात पित्त में सायंकाल शिरोबस्ति की योजना करनी चाहिये।

सम्यक शिरो बस्ति के लक्षण – गुण

ललाट, ग्रीवा एवं मुख पर स्वेद का प्रादुर्भाव होने लगे ऐसी स्थिति को शिरोबस्ति कर्म सम्यक् रूप से सम्पादित हो गया है, ऐसा जानना चाहिये।

शिरोबस्ति के प्रयोग से वलित, पलित केश भूमि विदार (रूक्षता) तथा अन्य वात जन्य शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं। आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि शिर में तैल लगाने (शिरोऽभ्यंग) से जो गुण उत्पन्न होते हैं, उनको और अधिक रूप से अल्पकालावधि में ही शिरोबस्ति द्वारा शमन किये जा सकते हैं। शिरों बस्ति से नासा, कर्ण, अक्षि आदि इन्द्रियों का तर्पण होता है, स्वर, हनु तथा शरीर में बल की वृद्धि होती है। इस कर्म से प्रज्ञा में स्थिरता एवं अभिवृद्धि होती है, उत्साह वृद्धि होती है। विशेषरूप से शिरोबस्ति कर्म द्वारा निद्रा में भूरिशः लाभ मिलता है। निद्रा में प्रत्यक्ष लाभ तथा अग्निमांद्य, दौर्बल्य आदि में परोक्ष लाभ होता है।

शिरोबस्ति की कार्मुकता –

शिरः प्रदेश, प्राण, इन्द्रियां, मन, बुद्धि प्रधान त्रिमर्म (हृदय बस्ति से) एवं संज्ञावह तथा चेष्टावह नाड़ियों का अधिष्ठान रूपी महत्त्वपूर्ण उत्तमांग का शिरोबस्ति कर्म होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है। वात का गुण रूक्ष तथा शीत होता है तथा शिरोबस्ति कर्म में उष्ण स्नेह होने से यह वात शामक होती है। स्नेह द्रव्यों के गुण स्निग्ध, गुरू, शीत, मृदु, द्रव, पिच्छिल, सर तथा सूक्ष्म होते हैं। इन गुणों से युक्त द्रव्य प्रायशः स्नेहन करते हैं। तथा स्नेहन कर्म वात का शमन करता है। शरीर में मार्दवता उत्पन्न करता है, मलों के संघात को शिथिल करता है, साथ ही धातुओं का उपवृंहण, वर्ण प्रसादन, आयु वृद्धि तथा बलोपचय कारक होता है।

शिरोबस्ति कर्म में स्नेहन के साथ साथ ही कोष्ण स्नेह के कारण स्वेदन की प्रक्रिया भी सतत् रहती है। स्वेदन कारक द्रव्यों के विषय में लिखा है, कि जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, स्थिर युक्त होते हैं, वे प्रायः स्वेदन कारक होते हैं।

स्वेदन कर्म स्तम्भन (जड़ता), गौरवता, शीतता का शमन करता है, तथा स्त्रोतोगत संग एवं संकोच को नष्ट कर उन्हें निर्मलता प्रदान करता है।

वात, कफ अथवा वात – कफ से उत्पन्न विकारों का शमन स्वेदन द्वारा हो जाता है। इस प्रकार स्वेदन कर्म अपने ऊष्णादि गुणों द्वारा वात का नियमन, दोषों का बहिर्गमन (स्वेद के माध्यम से) स्त्रोतोशुद्धि, त्वक् मार्दवता, कारक संधियों की जड़ता, तन्द्रा, स्तम्भ तथा संकोच का नाशक होता है। यह कर्म अपने सूक्ष्म गुण द्वारा संकुचित हुए स्त्रोतोमुख को विस्फारित करता है। संकुचित हुए स्त्रोतों के कारण जो पोषक सामग्री अवयव तक नहीं पहुचँ रही थी, उसके गमनागमन में बाधा न रहने के कारण वह उस अवयव तक पहुँचकर उसे तृप्त करती है।

सार संक्षेप –

संयुक्त गुण युक्त यह शिरोबस्ति कर्मः शिरोगतः स्नेह घटकों को पुनर्स्थित प्रदान कर वात के रूक्ष, लघु, शीतादि गुणों का शमन करती है, साथ ही आप जनित मार्गावरेध कफजन्य को नष्ट कर सिर को स्वस्थता प्रदान करती है, परिणामतः मूल रूपी शिर के स्वस्थ रहने पर परोक्ष रूप से सम्पूर्ण शरीर भी स्वस्थ रहता है, अतः शिर जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण अवयव को शिरोबस्ति विशिष्ट कर्म होने के कारण इसका अपना विशेष महत्त्व होता है।

शिरोबस्ति में प्रयुक्त स्नेह का अवशोषण –

आचार्य डल्हण ने अभ्यंग में प्रयुक्त स्नेह के अवशोषण क्रम का उल्लेख एकीयमत से किया है, उनके अनुसार ''तीन सौ मात्रा तक अभ्यंग करने से स्नेह रोमान्त में पहुंच जाता है, चार सौ मात्रा तक त्वचा में, पाँच सौ मात्रा तक रक्त में, छः सौ मात्रा तक अस्थि में तथा नो सौ मात्रा तक अभ्यंग करने पर स्नेह मज्जा धतु में पहुँच जाता है।

तैल व्यवायी एवं सूक्ष्म गुणयुक्त होने के कारण शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्त्रोतों में शीघ्रता से प्रसारित हो जाता है।

आचार्य सुश्रुत ने स्नेहावगाहन के प्रसंग में त्वचा, रोमकूप, धमनी तथा सिरामुखों द्वारा स्नेह का शरीर में अवशोषण स्वीकार किया है।

अभ्यंग में प्रयुक्त स्नेह, लेपादि के सार भाग को त्वचा में स्थित भ्राजक पित्त पचाकर शरीर में प्रविष्ट कर देता है।

शिरोबस्ति में प्रयुक्त स्नेह रोमकूप, सिरा एवं धमनी मुखों द्वारा गृहीत होकर तथा भ्राजक पित्त द्वारा पचकर शिरोगत मज्जा, नाड़ियाँ, संधियाँ, इन्द्रियां आदि को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपेण तृप्त करता है।

शिरोबस्ति के नियम एवं सावधानियाँ–

1. शिरोबस्ति कर्म करने से कम से कम 3 घण्टे पूर्व आतुर भोजन किया हुआ होना चाहिये।
2. शिरोबस्ति कर्म करने से पूर्व मल तथा मूत्र का विसर्जन कर लेना चाहिये।
3. शिरोबस्ति कर्म निवात स्थान पर करना चाहिये। निवात स्थान से तात्पर्य उस स्थान से है जहां पर कर्म सम्पादन के समय आतुर को सीधी हवा नहीं लगे, अन्यथा सीधी हवा लगने की स्थिति में शिरःशूल होने का भय रहता है। शिरोबस्ति कर्म सम्पादन के पश्चात् कम से कम एक घण्टे तक आतुर को प्रवात स्पर्श एवं शीतल जल का स्पर्श या सेवन नहीं होना चाहिये।
4. शिरोबस्ति कर्मोपरान्त रोगी को न्यूनतम 30 मिनट एवं अधिकतम 60 मिनट या एक घण्टा रोकने के पश्चात् ही घर जाने की अनुमति देना चाहिये।
5. शिरोबस्ति कर्म के समय एक घण्टे तक आतुर का चुपचाप एवं निश्चल बैठना साधरणतया असम्भव तो नहीं पर कठिन अवश्य है अतः अत्यन्त मन्द स्वर में रूचिमय संगीत चला देना चाहिये या आतुर को मन ही मन अपने ईष्ट का स्मरण करने के लिए निर्देश देना चाहिये।
6. शिरोबस्ति कर्म साधारणतः सायंकाल ही किया जाना चाहिये। सायंकाल शिरोबस्ति कर्म के पश्चात् स्त्री एवं पुरूष दोनों प्रकार के आतुर रात्रि को स्नान न करें तो लाभप्रद रहता है, क्योंकि शिरःगत स्नेह रात्रि में भी अपने कार्य को परोक्ष रूप में सम्पादित करता रहता है।
7. शिरोबस्ति के प्रयोगार्थ सिद्ध दशमूल तैल के प्रमादवश अत्यदिक उष्णता के कारण रोगी के शिर में दाह, शूल जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है अतः यंत्र में किन्चित् स्नेह पूर्ण कर आतुर से पूछकर ही स्नेह पूर्ण करना चाहिये।
8. शिरोबस्ति कर्म के समय सिद्धदशमूल तैल को ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर सीधा न डालकर शिरोबस्ति यंत्र के किनारे से शनैः शनै स्नेह पूर्ण कर्म करना चाहिये।

9. शीतकाल में शिरोबस्ति कर्म के समय प्रति 10–15 मिनट के अन्तर से कुछ स्नेह शिरोबस्ति यंत्र से निकालकर उसके स्थान पर उतना ही उष्ण स्नेह पूर्ण करना चाहिये। स्नेह को निकालने के लिये गहरी चम्मच या गर्तदार चम्मच अथवा प्लास्टिक की बड़ी सिरिंज का प्रयोग किया जा सकता है।
10. शिरोबस्ति यंत्र को शिर पर स्थापित करते समय ध्यान रहे कि वह अधिक न कसे और न ही ढ़ीला रहे क्योंकि अधिक कसने पर शिरःशूल हो सकता है तथा ढ़ीला रहने पर तैल का स्रवण होता है। सम्यक् यंत्र स्थापित करने के पश्चात् ही माषकल्क से अन्दर सावधानी से रन्ध्र पूर्ण करना चाहिये।
11. शिरोबस्ति कर्म हेतु रोगी का मुण्डन कराना आवश्यक है यदि कोई व्यक्ति मुण्डन न कराना चाहे तो जीरो मशीन से छोटे छोटे बाल कटवाकर ही शिरोबस्ति कर्म सम्पादित किया जा सकता है।
12. महिला रोगियों में शिरोबस्ति कर्म सम्पादनार्थ मुण्डन कराना सामान्यतः सम्भव नहीं होता है, अतः इनमें शिरोबस्ति सम्भव नहीं है, अतः ऐसी स्थिति में शिरोबस्ति सम्भव नहीं होने के कारण इनमें शिरो अभ्यंग से ही काम चलाना चाहिये।
13. शिरोबस्ति यंत्र निर्माण हेतु शास्त्र में माहिष चर्म का उल्लेख किलता है। माहिष चर्म से निर्मित शिरोबस्ति यंत्र वजन में भारी होने से रोगी अधिक समय तक इसे सहन नहीं कर सकता। अतः रेग्जिन का शिरोबस्ति यंत्र बनाकर काम में लिया जा सकता है।

1.4 <u>शिरोधारा विश्लेषण</u> –

भारतीय संस्कृति में धर्म का बहुत महत्त्व है। धर्म के साथ आरोग्य को भी जोड़ दिया गया है, बिना आरोग्य के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरूषार्थ चतुष्टय) की प्राप्ति सम्भव नहीं है। देवपूजन में भी आरोग्य प्राप्ति के उपायों की ओर संकेत दिया गया है। भगवान शिव ने सत्त्व, रज और तम तीनों गुण का अपूर्व संगम है, कभी सात्त्विक भाव कभी राजसिक और कभी तामसिक भाव स्वतंत्र रूप में प्रकट हुए हैं, इन भावों के अनुरूप लोक में उनका व्यवहार प्रसिद्ध है। शिवजी के पूजन

में मदकारी वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। इन मदकारी द्रव्यों के दुष्प्रभाव से बचने हेतु ही सम्भवतः शिवलिंग पर ''जलधारा'' ''दुग्धधारा'' प्रवाहित की जाती है, जो कि आयुर्वेदीय शिरोधारा का ऐतिह्य हो सकती है।

शिरोधारा परिभाषा –

शिर पर विशेषतः कपाल प्रदेश पर औषधि, क्वाथ, दूध, तक्र, इक्षुरस, घृत और तैल इत्यादि द्वारा विशिष्ट प्रकार से धारा छोड़ना ''शिरोधारा'' कहलाता है। इसी को शिरः सेक भी कहते हैं। आचार्य चरक और सुश्रुत ने शिरो रोगों में शिर पर परिसेक करने का विधान बताया है, यथा –

''शिरोविरेक सेकादि सर्वविसर्पनुच्च यत्।

आचार्य सुश्रुत ने वातिक शिरोरोगों के अन्तर्गत वातध्नसिद्धदूध से परिषेक, पित्त्ज तथा रक्तज रोगों में घृत से परिषेक करने को कहा है, यथा –

'वातघ्नसिद्धैः क्षीरेश्च सुखोष्णैः सेकमाचरेत्। (सुश्रुत उ. 26/5)

पित्तरक्त समुत्थानो शिरोरोगो निवारयेत्।

शिरोलेपेः स सर्पिष्कैः परिषेकैश्च् शीतलेः।। (सुश्रुत उ. 26/12)

शिरोधारा पात्र –

वर्तमान काल में शिरोधारा से सम्बन्धित प्रयोगों में परिष्कार हुआ है। शिरोधारा या परिषेक करने के लिए एक विशिष्ट पात्र का उपयोग किया जाता है उसे ''धारापात्र'' कहते हैं, यह धारापात्र एक चौड़े मुखवाला पांच से छः इंच गहरा और नीचे की ओर सिकुड़ा दो प्रस्थ अर्थात् द्रव भरा जा सके ऐसा एक धातु, मृत्तिका या काष्ठ निर्मित पात्र होता है, जिसके तल में कनिष्ठिका अंगुली प्रमाण का छिद्र होता है एवं इस छिद्र में वर्ति लगाई जाती है, जो कि तैल तक्रदि को समप्रमाण में गिराती है, यथा –

स्वर्णाद्युत्तमलोहजस्तु करको मृत्संवगो वात्र तत्।

नालागं तु कनिष्ठिकांगुलि परिणाहोन्मितं रोगिणः।।

द्विप्रस्थ प्रमितो ..... कार्यः शिरः सेचने।। (धाराकल्प)

शिरोधारा विधि –

शिरोधारा योग्य आतुर को विशेष रूप से निर्मित धारा टेबल पर उत्तान (पीठ के बल) लिटाते हैं, उसका शिरः पूर्व दिशा की ओर रखते हैं, इस अंश को विभक्त करने वाली काष्टपट्टिका पर नरम प्लास्टिक वाला तकिया रखकर शिर को इस प्रकार से उन्नत रखा जाता है कि धारापतित द्रव पहले शिर पर गिरकर बाद में टेबल पर बने हुए गर्त में जाए ताकि वहां से पुनः संग्रहित किया जा सके। शिरोधारा से पहले रोगी को सर्वप्रथम अभ्यंग करवाते हैं। आतुर को जिस धारा टेबल पर लिटाते हैं उसके शिर के ठीक ऊपर धारापात्र मजबूत रस्सी लौह श्रृंखला की सहायता से लटकता रहे ऐसी व्यवस्था करते हैं। आतुर के नेत्रों पर कपास (कॉटन) के बड़े बड़े पैड रख देते हैं, या आवश्यकतानुसार हल्का बंधन भी बांध सकते हैं, तत्पश्चात् धारा पात्र में तैलादि औषध भरते हैं। धाराविधि में दो कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, एक कर्मचारी विशेषरूप से निर्मित टेबल के शिर की ओर के भाग में ठीक बीच में खड़ा रहकर धारा पात्र को हाथ में पकड़कर (लटका हुआ) उसकी वर्ति में से धारा को बराबरा कपाल प्रदेश पर गिराता रहे। यह गिरा हुआ द्रव धारा टेबल के छिद्र में से नीचे स्रवित होता है, जो उसके ठीक नीचे स्टूल पर रखे द्रव संग्रह पात्र में पुनः संग्रहित किया जाता है। यह संग्रहित तैल द्वितीय कर्मचारी ध्यान में रखते हुए पुनः धारा पात्र में डालता रहे। इस प्रकार से यह विधि 40 मिनिट से एक घण्टे तक करते हैं। आजकल शिरोधारा एरोमेटिक मशीन द्वारा की जाती है।

शिरोधारा प्रकार –

1. तक्र धारा
2. तैल या घृत धारा

1. तक्र धारा

गुण – इसमें धारा कल्प के अर्न्तगत द्रव रूप में तक्र का प्रयोग करते हैं, जिसके निम्नलिखित गुण होते हैं।

– तक्रधारा से केशों का सफेद होना बंद होता है। शरीर की थकावट, उदासीनता दूर होती है। शिरःशूल का शमन होता है। दोष प्रकोप का शमन होता है। ओजक्षय दूर होता है। हस्तपादतल में विदार नहीं पड़ती हैं। संधियों का शैथिल्य कम होता है। हृद्रोग अग्निमांद्य, अरूचि, कर्णरोग, नेत्ररोग में लाभ होता है। यथा –

केशादीनांच शौक्लयं क्लममपि ..... तक्रोत्थधारा हरति।। (धाराकल्प)

2. तैल या घृतधारा

इसके अन्तर्गत विशेष रूप से औषध द्रव्यों से सिद्ध तैल या घृत का धाराकल्प के अन्तर्गत उपयोग करते हैं, जिसके गुण निम्नलिखित हैं –

1. तैल और घृत धारा से वाणी एवं मन की स्थिरता होती है।
2. शरीर का बल बढ़ता है।
3. भोजन में रूचि उत्पन्न होती है।
4. वृत्ति एवं धारणा शक्ति में अभिवृद्धि होती है।
5. स्वर माधुर्ययुक्त होता है।
6. त्वचा कोमल होती है।
7. चक्षु रोगों में लाभ होता है।
8. धातुओं का पोषण होता है।
9. रतिकर्म में प्रीति होती है।
10. शरीर में शीतलता रहती है।
11. गहन एवं गहरी निद्रा में अभिवृद्धि होती है।
12. आयु में अभिवृद्धि होती है।
13. आलस्य का विनाश होकर शरीर में स्फूर्ति की वृद्धि होती है।

14. इन्द्रियों में प्रसन्नता होती है। यथा –

स्थैर्यंवाग् मनसौः शरीरबलमप्याहारकांक्षाधृतिर्माधुर्यं वचस्पस्त्वचोपिमृदुता नेत्रे प्रकाशोगदः। शुक्रासृ परिपोषणं रतरतिर्दीर्घायुरल्पोष्णता। सुस्वाप्नं घृततैलसेचवन गुणेनास्तीहजाग्रत्सुखम्। (धाराकल्प)

शिरोधारा सम्बन्धित सावधानियाँ –

शिरोधाराकल्प में एवं शिरोधारा करते समय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिये –

1. वातप्रधान दोष में सुखोष्ण तथा पित्त या रक्त का प्राधान्य हो तो शीत द्रव का प्रयोग करना चाहिये।
2. वात दोष में तिल तैल से पित्त और रक्त में घृत से, कफ में तिल तैल से तथा वातपित्त रक्त संसृष्टि में तैल और घृत को समभाव धाराकल्प में लेने का विधान रखना चाहिये।
3. शिर में धारा करते समय चार अंगुल ऊचाई से वर्ती से धारा गिराना चाहिये।
4. बहुत मंद धारा नहीं होनी चाहिये न ही तीव्र अपितु अखण्ड धारा समप्रमाण में प्रवाहित करनी चाहिये। शिरोधारा हेतु प्रातःकाल 7 से 10 का समय श्रेष्ठ रहता है।
5. मध्य एंव रात्रि में शिरोधारा का निषेध है।
6. धारा कर्म के समय वेगों का धारण नहीं करें।
7. धारा कर्म पश्चात् प्रसन्न मन से विश्राम करना चाहिये।
8. शिरोधारा पात्र को स्टेण्ड से मजबूती से बांधना चाहिये।
9. शिरोधारा के समय रोगी के नेत्रोंपर कॉटन (कपास) के स्वाब रख दें या आवश्यकतानुसार बंधन से हल्का बंधन करना चाहिये।
10. कानों में भी रूई का स्वाब लगाना चाहिये।
11. शिरोधारा करने में दो कर्मचारियों की उपस्थिति यथासम्भव होनी चाहिये।
12. धारा कर्म 40 मिनिट से एक घण्टे तक ही करना चाहिये।

1.5 **अक्षितर्पण परिचय एवं लाभ** – संस्कृत भाषा में नेत्रों को 'अक्षि' (चक्षु) कहा जाता है, अतः नेत्रों में ''स्नेह धारण'' की विधि को ''अक्षितर्पण'' कहते हैं।

अक्षितर्पण विधि से निम्न नेत्र रोगों में लाभ प्राप्त होता है –

- नेत्रों में वात–पित्त एवं कफजन्य रोगों का विनाश होता है।
- आंखों के सामने बार–बार अंधेरा छाना जैसी बीमारी दूर होती है।
- आंखों का रूखापन एवं सूजन दूर होती है।
- आंखों की भोहों की बीमारियाँ एवं पलकों के बाल गिरना बंद होता है।
- पलकों का झपकना, ठीक से बंद एवं नहीं खुलना दूर होता है।
- आखें ट़ेढ़ी होना, मलिन दिखना दूर होता है।
- आखों से बार बार पानी आना या पानी का बिल्कुल नहीं आना दूर होता है।
- आंखें ''सुन्दर'' एवं नेत्र ज्योति बढ़ती है।

अक्षितर्पण की विधि – प्रातः काल के समय रोगी को टेबल पर पीठ के बल नेत्रकोष के उपर पाली तैयार करते हैं जिसकी ऊंचाई दो अंगुल रखते हैं। तत्पश्चात सुखोष्ण औषधसिद्ध स्नेह जैसे ''त्रिफला घृत'' को आंखें बंद कर धीरे से दोनों आंखों पर डाल देते हैं। फिर रोगी को बार–बार आंखें बंद एवं खोलने के लिये कहते हैं। इस तरह 5 से 7 मिनट तक स्नेह का धारण कराते हैं। समयावधि पूर्ण होने पर उड़द की पाली से बाहर की ओर से स्नेह को बाहर निकाल देते हैं। अन्त में रोगी को धूमपान कराते हैं।

सावधानियाँ –

- अक्षितर्पण के पूर्ण रोगी को वमन, विरेचन और ''नस्य विधि शोधन कराना चाहिये।
- ''निवात स्थान'' पर रोगी को 'नेत्रतर्पण' कराना चाहिये।
- 7 मिनट से अधिक नेत्रतर्पण नहीं कराना चाहिये।

- स्नेह, द्रव्य (त्रिफला घृत) सुखोष्ण एवं अच्छी तरह से छानकर ही पलक बंद कराकर डालना चाहिये।
- अक्षि तर्पण के पूर्व नस्य तथा बाद में धूमपान कराना चाहिये।
- आंखों को मसलना नहीं चाहिये।
- अक्षितर्पण के पश्चात एकदम प्रकाश में नहीं आना चाहिये।
- अक्षितर्पण के पश्चात आकाश एवं सूर्यादि की तीव्र रोशनी की ओर नहीं देखना चाहिये।
- वात रोगों में प्रतिदिन, पित्त रोगों में एक दिन छोड़कर तथा कफ जन्य नेत्र रोगों में दो दिन छोड़कर अक्षितर्पण 7 बार करना चाहिये।

1.6 **अभ्यंग परिचय** – विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

विधि – अभ्यंग (मालिश) – प्रतिदिन विशेषकर वात रागों को दूर करने के लिये ''शरीर की त्वचा पर तेलादि लगाकर वैज्ञानिक पद्धति से मालिश करना अभ्यंग कहलाता है।

अभ्यंग के लाभ –

- नित्य प्रतिदिन मालिश करने से बुढ़ापा देर से आता है। अर्थत मालिश ''जराहर'' होती है।
- मांसपेशियों में उत्त्पन्न थकावट दूर होती है।
- वायु के रोगों को (दर्द–शूल) दूर करता है।
- ''दृष्टि प्रसादकर'' अर्थात् आंखों की ज्योति को बढ़ाता है।
- मालिश से अनिद्रा दूर होकर नींद अच्छी आती है।
- मालिश से त्वचा कोमल तथा सुदृढ़ होती है।
- मालिश से शरीर मजबूत एवं सुन्दर दिखता है।
- वर्ण बलप्रद अर्थात् त्वचा शुद्ध होती है, रूप वर्ण निखरता है। बल बढ़ता है एवं रूप प्रिय लगता है एवं व्यक्तित्त्व विकास में सहायक होता है।

- अभ्यंग से स्पर्श इन्द्रिय (त्वचा) ''सक्रिय एवं स्वस्थ'' होती है।
- पैरों की मालिश करने से पैर दर्द, एड़ी दर्द, घुटनों का दर्द दूर होता है एवं तलवों पर मालिश से नेत्र ज्योति बढ़ती है।
- पैरों की बिवाई (एड़ी फटना) नहीं होता है।

शिरोभ्यंग – शिर पर तेल की मालिश करना ''शिरोभ्यंग'' कहलाता है। सम्पूर्ण शरीर की मालिश में सर्वप्रथम शिर से मालिश करते हैं।

- शिर की मालिश से नाड़ी मण्डल – तंत्रिका तंत्र एवं इन्द्रियाँ स्वस्थ–प्रसन्न होती है।
- शिर की बीमारियाँ, अनिद्रा, माइग्रेन आदि दूर होते हैं।
- बालों में कोमलता आती है।
- लम्बे घने बाल होते हैं।
- मस्तिष्क का पोषण होता है।
- त्वचा कोमल एवं सुन्दर होती है।
- शिर में होने वाली सुई चुभने जैसी वेदना दूर होती है।
- दाह–पाक–वेदना, पिडकायें–वृण–खुजली आदि दूर होती है।

अभ्यंग विधि – अनुलोम गति से शरीर पर सुखपुर्वक तैलादि से विशेषकर सिर, पैरों पर मालिश करना चाहिये। हाथ एवं पैरों पर ऊपर से नीचे की और मालिश करना चाहिये। संधि स्थानों अर्थात घुटनों, कोहनी एवं पेर पर वर्तुलाकर (गोलाइ में) मालिश दायें से बांयीं ओर हलके सुखस्पर्श से करना चाहिये। शरीर के अन्तर्गत स्थित अवयवों को उत्तेजित करने हेतु मालिश निम्न सात अवस्थाओं में रोगी को रखकर करना चाहियें–

1. दोनों पैरों को सीधा रखकर रोगी को बैठाकर
2. रोगी को मसाज टेबल पर पीठ के बल लिटाकर
3. रोगी को बांयी करवट लिटाकर

4. रोगी को पेट के बल लिटाकर
5. रोगी को दांयी करवट लिटाकर
6. पुनः पीठ के बल लिटाकर
7. पुनः नम्बर 1 की स्थिति में बैठाकर अभ्येंग (मालिश) करना चाहिये।

सावधानियाँ –

- सिर पर मालिश हल्का उष्ण या शीत स्नेह से मालिश करना चाहिये।
- हाथ–पैरों पर उष्ण तेल से मालिश करना चाहिये।
- ठंडे मौसम में उष्ण तेल तथा गरम मौसम में ठंडे तेल से मालिश करना चाहिये।
- सम्पूर्ण शरीर की मालिश करने पर सर्वप्रथम शिर से मालिश प्रारम्भ करना चाहिये।

1.7 **स्वेदन विधि** – पंचकर्म के अन्तर्गत वह प्रक्रिया जिससे शरीर से पसीना सामान्यतः निकले स्वेदन कहलाती है।

स्थानिक स्वेदन – वाष्प यंत्र से किसी स्थान विशेष पर पाइप के सहारे स्टीम देने को ''नाड़ी स्वेदन'' कहते हैं।

''सर्वांग स्वेदन'' – सम्पूर्ण शरीर पर वाष्प यंत्र में बैठकर या लेटकर ली जाने वाली वाष्प को ''सर्वांग स्वेदन'' कहते हैं। आयुर्वेदिक वैद्यक शास्त्र के अनुसार पसीना मेद धातु का मल है। जिसे स्वेदन विधि द्वारा बाहर निकाला जाता है।

स्वेदन कर्म हेतु वाष्प यंत्र सामान्यतः दो प्रकार के काम में लिये जाते हैं। एक वाष्पयंत्र वह जिसमें स्टूल पर बैठक गर्दन यंत्र से बाहर निकालकर तथा दूसरा वह जिसमें रोगी को लिटाकर गर्दन यंत्र से बाहर निकालकर स्टीम (वाष्प) दी जाती है।

स्वेदन के लाभ

- स्वेदन से शरीर की जकड़ाहट दूर होती है।

- मोटापा दूर होता है।
- भारीपन एवं स्थूलता दूर होती है।
- शरीर में हल्कापन आता है।
- ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेन्द्रियाँ स्वस्थ होती है।
- त्वचा के रोग दूर होकर त्वचा कोमल सुन्दर दिखती है।
- हार्मोन्स का संतुलन ठीक होता है।
- शरीर में स्फूर्ति आती है।
- आभ्यान्तर अंग–अवयव स्वस्थ होते हैं।
- नींद अच्छी आती है।
- जाठराग्नि बढ़ती है।
- पाचन क्रिया सशक्त होती है।
- स्पर्श गुण बढ़ता है।
- त्वचा में रक्त संचार सुव्यवस्थित होता है।
- उष्ण–तीक्ष्ण–सर–सूक्ष्म गुण होने के कारण कफजन्य रोग दूर होते हैं।

1.8 **पिड्चिल** (सर्वांगधारा) – यह केरलीय चिकित्सा पद्धति की वैज्ञानिक विधि है। इसमें रोगी को लंगोट पहनाकर द्रोणी टेबल पर लिटाकर ''धारायंत्र'' द्वारा सर्वांग धारा दी जाती है। जिससे शरीर में दृढ़ता, ओज, तेज, वर्ण बढ़ता है। तेलधारा – दूध की धारा आदि द्रव्यों से फुहारों की तरह धारा की जाती है। धारा देने के पश्चात ठंडे जल से कुल्ले कराते हैं तथा शरीर को आराम कराते हुये हल्का सा मर्दन करते हैं। तत्पश्चात सुखोष्ण जल से स्नान कराते हैं। सर्वांगधारा आजकल स्वचलित धारायंत्र से की जाती है। परम्परानुसार दो बांयी ओर एवं दो दायीं और कुल चार कर्मचारी एक साथ सर्वांगधारा क्रिया प्रारम्भ करते हैं। अस्थिभग्न, पक्षाघात (लकवा), शरीर में कम्पन आपदि वात रोगों में पिड्चिल क्रिया विशेष लाभप्रद है।

पत्र–पिण्ड–स्वेद – सामान्यतः इसे P.P.S. कहा जाता है। एरण्ड पत्र, सहिजन पत्र, धत्तूरपत्र, अर्कपत्र, मैथीदाना आदि के मिश्रण की जड़ीबुटियों को कपड़े की सूती पोटली में तैयार कर उसे गरम तेल में स्थानिक स्पर्श कर पत्र पिण्ड स्वेद किया जाता है। P.P.S. के आश्चर्यजनक सुखद परिणाम विशेषकर वात रोगों में तंत्रिका जन्य विकारें में, जोड़ों के दर्द में, मांसपेशियों के दर्द निवारण में प्राप्त होते हैं।

गण्डूष एवं कवल धारण – औषध सिद्ध द्रव्यों या स्नेहों को मुख में 'धारण करना' ''कवल'' तथा मुहँ में भरकर गरारे करने की विधि को ''गण्डूष'' कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा मुँह के रोग मुख के छालों, घाव, अन्दर की सूजन आदि दूर होते हैं। स्वाद की ग्रथियाँ सक्रिय होती है। जिह्वा स्वस्थ होती है। भोजन करने में स्वाद की सम्यक् अनुभूति होती है। मुखगत, कपोलगत, जिह्वागत तथा कंठगत विकारें में (टोन्सिल – तुण्डीकेरी) एवं गुटखा, जर्दा, बीड़ी–सिगरेट जम्बाकूजन्य व्यसनों के सेवन से उत्पन्न अनेक रोगों के निवारण में लाभदायक है।

परिषेक – आयुर्वेदिक वनस्पतियों के औषध सिद्ध क्वाथ को फुहारे की तरह टेबल पर लिटाये हुये लंगोट (कोपीन) पहने रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर डालते हैं। यह परिषेक पद्धति पंचकर्म के अन्तर्गत मांसपेशीयजन्य एवं अस्थिसंधिजन्य विकारें में विशेष रूप से उपयोगी है।

अवगाहन – इस अवगाहन प्रक्रिया के अन्तर्गत रोगी को औषध सिद्ध स्नेह (तैल) अथवा वानस्पतिक वातनाशक क्वाथ द्रव्यों से भरे हुये टब में बिठाकर की जाती है। अवगाहन क्रिया कमर दर्द (स्लिप डिस्क) एवं पाईल्स (बवासीर) आदि रोगों में लाभदायक है।

शिरोपिचु – रोगी को कुर्सी पर बैठाकर औषध सिद्ध स्नेह से युक्त रूई, वस्त्र आदि को शिर पर धारण कराया जाता है। शिर को यथासम्भव स्थिर रखते हैं। इससे रोगी के मनोविकार एवं बालों सम्बन्धी समस्यायें जैसे – बाल टूटना, दो मुँह के बाल शिर में

होना, बालों की जड़ों अर्थात केशभूमि में खुजली होना, बाल सफेद होना, गंजापन (खलिय) होना आदि के निवारण में लाभदायक है।

कर्णपूरण – इस प्रक्रिया के अन्तर्गत औषधसिद्ध स्नेह जैसे निशा तेल आदि को करवट लिये रोगी के कान में सुखोष्ण डाला जाता है, जिससे कर्ण सम्बन्धी रोग यथा – कान में खुजली, वेदना, खुजली, ऊँचा सुनाई देना आदि प्रकार के रोग दूर होते हैं।

षष्टिक शाली पिण्डस्वेद (नवरकिजी) – केरलीय पंचकर्म की यह बहुत ही वैज्ञानिक वैशिष्टय प्रधान पद्धति है, जिसमें यथासम्भव गाय के औषध सिद्ध दूध में साठी चावलों को पकाकर तथा उन पके हुये चावलों को सूती कपड़े में पोटलीनुमा बांधकर इन पोटलियों को औषध सिद्ध गुनगुने दूध में डूबोकर शरीर पर रगड़ा जाता है लाइलाज– असाध्य माने जाने वाले मांसबल क्षीण विकारों में, दुर्बल मांसपेशियों के विकारों में बहुत लाभदायक है।

1.9 बोधात्मक प्रश्न –

1. शिरोबस्ति का परिचय एवं इसके लाभों का वर्णन कीजिये?
2. शिरोधारा की विधि एवं प्रकारों का वर्णन कीजिये?
3. नेत्र रोगों में ''अक्षितर्पण'' की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये?
4. जीवन शैली रोग – मोटापा – मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि में पंचकर्म की सहायक विधियों का सविस्तार वर्णन कीजिये?
5. संर्वागधारा, पी.पी.एस., अवगाहन, षष्टिकशाली पिण्डस्वेद, गण्डूषादि पर टिप्पणी कीजिये?

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

चरक संहिता, विद्योतनी – पं काशीनाथ शास्त्री

अष्टांग ह्रदय – सर्वांगसुन्दरा, अरूणदत्त

सुश्रुत संहिता – ''आयुर्वेद रहस्य दीपिका''

आयुर्वेदीय पचंकर्म विज्ञान – वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे

मनोऽवसाद रोग में पंचकर्म की उपयोगिता – वैद्य नित्यानन्द शर्मा

इस पूरक अध्ययन इकाई के अन्तर्गत मानव के दीर्घायु बनाये रखने हेतु दैनिक जीवन में प्रयोग करते हुये शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को चिरस्थायी बनाये रखने हेतु वर्तमान समय में पंचकर्म चिकित्सा पद्धति जनोपयोगी तथा लोकप्रिय होती जा रही है। वस्तुतः आज के तनाव भरे जीवन में सुख–शांति एवं आनन्द प्राप्ति हेतु ''शरीर शोधन'' (कायाकल्प) की विशिष्ट प्रक्रिया में पंचकर्म चिकित्सा पद्धति एकल, द्वि एवं बहू, त्रिदाषों के मिश्रित दोषों को, मलों को, विजातीय द्रव्यों को शरीर के प्राकृत मार्गो – मुख, गुदा, नासिका, त्वचाछिद्रों द्वारा सुखपूर्वक बाहर निष्कासन कराते हुये स्वास्थ्य को अक्षुण्य बनाये रखने में उपयोगी है।

विशेष – पंचकर्म चिकित्सा को चिकित्सा विशेषज्ञ, सहायक कर्मचारी, औषधियों, तेलों एवं सम्बन्धित यंत्र, उपकरणों के बिना किया जाना सम्भव नहीं है। अतः पंचकर्म विशेषज्ञ के सानिध्य में शिक्षण प्राप्त कर ही इसका उपयोग करना रोगी एवं स्वस्थ व्यक्ति के हित में है।

सर्वे सन्तुः निरामया।